पाठ्यक्रम - ११

११.अ विश्व संरचना के प्रमुख घटक - द्रव्य

जिसका कभी नाश न हो ऐसी त्रिकालवर्ती वस्तु द्रव्य कहलाती है। द्रव्य सत् लक्षण वाला, उत्पाद व्यय ध्रौव्य से युक्त होता है। गुण और पर्याय वाला द्रव्य होता है। द्रव्य में भेद करने वाले धर्म को गुण और द्रव्य के विकार को पर्याय कहते हैं। उदाहरण - सोना सत् होने से द्रव्य, पीलापन, भारीपन सदा साथ रहने से गुण, मुकुट कुण्डल आदि नाशवान् होने से पर्याय कहलाती है तथा कुण्डल का बनना-उत्पाद, मुकुट का मिटना-व्यय, इन दोनों दशाओं में स्वर्ण का ज्यों का त्यों रहना ध्रौव्य है। द्रव्य छह होते हैं:-

१. **जीव द्रव्य** - जो इन्द्रिय आदि चार प्राणों के द्वारा जीता था, जीता है एवं जीएगा उसे जीव कहते है।

२. **पुद्गल द्रव्य** - स्पर्श-रस-गंध और वर्ण वाला पुद्गल द्रव्य होता है। हमारे आस-पास जो कुछ भी देखने में आ रहा है वह सब पुद्गल द्रव्य का ही परिणमन है जैसे टेबल, पुस्तक, शरीर इत्यादि।

३. **धर्म द्रव्य** - चलते हुए जीव एवं पुद्गल के चलने में जो उदासीन निमित्त कारण है उसे धर्म द्रव्य कहते हैं। जैसे पानी मछली के चलने में सहायक है, पटरी, रेल के चलने में सहायक है।

४. **अधर्म द्रव्य** - ठहरते हुए जीव एवं पुद्गल के ठहरने में जो सहायक कारण। वह अधर्म द्रव्य है। जैसे- ठहरने वाले पथिक के लिए पेड़ की छाया, हवाई जहाज के लिए हवाई अड्डा ठहरने में निमित्त कारण है।

५. **आकाश द्रव्य** - सभी द्रव्यों को रहने के लिए जो स्थान दे/ अवकाश दे उसे आकाश द्रव्य कहते हैं। जैसे मनुष्यों को रहने के लिए मकान, पक्षियों के रहने के लिए घोंसला स्थान देता है।

६. **काल द्रव्य** - जो परिणमन करते हुए जीवादि द्रव्यों के परिणमन में सहकारी कारण है उसे काल द्रव्य कहते हैं। सेकंड, मिनट, घण्टा आदि काल द्रव्य की पर्याए हैं। जैसे घूमते हुए चक्र की कील।

छहों द्रव्य लोकाकाश में सर्वत्र पाये जाते हैं अर्थात् लोकाकाश में ऐसा एक भी स्थान नहीं है जहाँ छहों द्रव्य न पाये जाते हों। अलोकाकाश में मात्र आकाश द्रव्य पाया जाता है।

जीव द्रव्य अनन्त हैं, उनसे पुद्गल परमाणु अनन्त हैं। धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्य एक-एक हैं। काल द्रव्य असंख्यात है। आकाश द्रव्य एक है, छह द्रव्यों के निवास स्थान की अपेक्षा लोकाकाश और अलोकाकाश ये दो भेद आकाश के हो जाते हैं।

एक अविभागी पुद्गल आकाश के जितने स्थान को घेरता है उसे प्रदेश कहते हैं। एक जीव द्रव्य के असंख्यात प्रदेश होते हैं। जीव संकोच - विस्तार स्वभाव वाला होने से छोटे से छोटे शरीर में अथवा बड़े से बड़े शरीर में भी रह सकता है। पुद्गल द्रव्य संख्यात, असंख्यात व अनन्त प्रदेश वाला होता है। धर्म द्रव्य व अधर्म द्रव्य के असंख्यात प्रदेश हैं एवं आकाश द्रव्य अनन्त प्रदेशी है। काल द्रव्य एक प्रदेश वाला है अत: काल द्रव्य को अप्रदेशी कहा गया है शेष द्रव्य सप्रदेशी जानना चाहिए।

परस्पर जीवों का उपकार करना ही जीव द्रव्य का उपकार हैं। शरीर, वचन, मन, प्राणापान, सुख, दुख, जीवन, मरण ये सब पुद्गल द्रव्य के उपकार हैं। गति और स्थिति में निमित्त होना यह क्रम से धर्म और अधर्म द्रव्य का उपकार है। वर्तना, परिणाम, क्रिया, परत्व और अपरत्व ये काल द्रव्य के उपकार हैं। प्रत्येक द्रव्य में प्रति समय होने वाला परिवर्तन वर्तना कहलाता है। परिस्पंदन रहित द्रव्य की पूर्व पर्याय की निवृत्ति, नवीन पर्याय की उत्पत्ति परिणाम है। परिस्पंदन रूप परिणमन क्रिया कहलाती है। छोटे - बड़े के व्यवहार को परत्व-अपरत्व कहते हैं।

प्रत्येक कार्य समय पर होता है इसलिए उतावली नहीं करना चाहिए
जिस प्रकार वृक्ष में चाहे जितना भी पानी डाला जाए पर वह समय पर ही फल देता है
समय एवं धैर्य हमारी समस्याओं को स्वयमेव सुलझा देते हैं।

६०. गुरु-प्रार्थना

गुरुदेव दया करके, मुझे जग से छुड़ा देना।
पा जाऊँ मैं आतम को, वो राह दिखा देना॥
करुणानिधि नाम तेरा, करुणा को जगाओ तुम,
मेत्री के भावों को, हे नाथ जगा दो तुम।
प्रतिपल समता में रहूँ, संवर ये सिखा देना॥
गुरुदेव दया.....॥
लाखों को तारा है, मुझको भी तारो तुम,
मैं शरण पड़ा तेरी, मेरी ओर निहारो तुम।
मेरा जनम-मरण छूटे, वो भक्ति जगा देना॥
गुरुदेव दया.....॥
मैं अनादि से घायल हूँ, उपचार कराओ तुम,
हो जाऊँनिरोग सदा, औषध वो पिलाओ तुम।
पा जाऊँ परम पद को, वो राह चला देना॥
गुरुदेव दया.....॥
टूटी हुई वीणा के सब, तार मिला दो तुम,
गाऊँ मैं मधुर संगीत, वो साज बना दो तुम।
ये गीत जो बिछुड़ा है, गायक से मिला देना॥
गुरुदेव दया.....॥
बहती हुई सरिता की, आवाज मिटाओ तुम,
अंतस में हे स्वामी, ज्योति प्रकटाओ तुम।
ये बूँद जो बिछुड़ी है, सागर से मिला देना॥
गुरुदेव दया.....॥

.....

श्री विद्यासागर जी

श्री विद्यासागर जी गुरुवर हमारे,
संसार सिंधु के तुम हो किनारे।
तू ज्ञान सागर की पहली लहर है,
जाना कहाँ है ये तुमको खबर है।
हमको भी ले चल मुक्ति की मंजिल,
जीवन की नैया है तेरे सहारे।
श्री विद्यासागर.....।।
तुम वीतरागी हो वैराग्यदायी,
श्री जैन शासन की महिमा बताई।
लाखों को तारा हमने पुकारा,
आवाज सुन लो गुरुवर हमारे।
श्री विद्यासागर.....।।
तुम हो अहिंसा धर्म के मसीहा,
तुम स्वाती की बूँद मैं हूँ पपीहा।
हमको पिला दो हमको जिला दो,
अध्यात्म अमृत वचन ये तुम्हारे।
श्री विद्यासागर.....।।
सम्यक्त्व समता के आलय तुम्हीं हो,
माँ भारती के हिमालय तुम्हीं हो।
पथ तुमसे पावन उपकारी जीवन,
हम अश्रु जल से चरणा पखारें।
श्री विद्यासागर.....।।

संशय विपर्यय अनध्यवसाय

एक सेठजी थे। उन्होंने कुत्ते के दो पिल्ले खरीदे। जो कि देखने में बहुत सुंदर थे। जब तीन ठगों ने उनको देखा तो वे सोचने लगे कि ये कुत्ते के बच्चे कितने सुंदर हैं। इन्हें किसी भी तरह सेठजी से ले लेना चाहिए। इसके लिए वे तीनों मिलकर एक योजना बनाते हैं। तीनों एक-एक फर्लांग की दूरी पर खड़े हो जाते हैं और जब सेठजी उधर से निकलते हैं तो पहला ठग कहता है- अरे सेठजी, ये बिल्ली के बच्चे कहाँ से लाए? सेठजी इस बात पर ध्यान नहीं देते और सोचते हैं- पता नहीं क्या कह रहा है। यह अनध्यवसाय की स्थिति है।

जब सेठजी एक फर्लांग और आगे जाते हैं तो दूसरा ठग उनको मिलता है। वह भी अपनी पूर्व नियोजित योजना के अनुसार उनसे कहता है- सेठजी! ये बिल्ली के बच्चे कितने सुंदर हैं। आप इन्हें कहाँ से लाए हैं? सेठजी यह सुनकर संशय में पड़ जाते हैं। कि पहले भी उस व्यक्ति ने टोका था, और अब यह भी वही बात कह रहा है। जाने ये बिल्ली के बच्चे हैं या कुत्ते के? सेठजी यही विचारते हुए जब कुछ और आगे बढ़े तो तीसरा ठग उन्हें मिला। वह भी उसी बात को दोहराता है। तब सेठजी को यह निश्चय हो जाता है कि ये कुत्ते के नहीं, बिल्ली के ही बच्चे हैं। यही विपरीत ज्ञान है।

इसी प्रकार जब हम सुनते हैं शरीर ही आत्मा है। लेकिन उस पर कुछ ज्यादा गौर नहीं करते। यह अनध्यवसाय है। फिर सुनते हैं कि शरीर में आत्मा है लेकिन है या नहीं है इस बात का संशय होना संशय ज्ञान है। लेकिन तभी कोई यह कहे कि आत्मा कुछ नहीं होती। उसे किसने देखा। शरीर आत्मा एक ही है। ऐसा निश्चय हो जाना ही विपरीत ज्ञान है।

पाठ्यक्रम - ११

११.ब जीवों की भावात्मक परिणति - छह लेश्या

जो कर्मों से आत्मा को लिप्त करती हैं। उसको लेश्या कहते है।

लेश्या के छह भेद हैं - १. कृष्ण, २. नील, ३. कापोत, ४. पीत, ५. पद्म, और ६. शुक्ल

१. कृष्ण लेश्या :- सदा बुरे विचार करना, बात-बात में क्रोध करना, दूसरों से घृणा करना, दया धर्म से रहित होना, वैर भाव रखना, सदा शोक संतप्त रहना, शत्रुता को न छोड़ना,लड़ना आदि जिसका स्वभाव हो आदि कृष्ण लेश्या वालों के लक्षण हैं।

२. नील लेश्या - आलसी, बुद्धिहीन, कामी, भोगी, डरपोक, ठग, परवंचना में दक्ष, आहारादि संज्ञाओं में आसक्त, अति लोभी, सदा मान-सम्मान पाने के भाव आदि नील लेश्या वालों के लक्षण हैं।

३. कापोत लेश्या - परनिन्दा,आत्म-प्रशंसा, बात-बात में नाराज होना, शोकाकुल होना आदि कापोत लेश्या वालों के लक्षण हैं।

४. पीत लेश्या - दयालु, विवेकी, संतोषी, तीव्र बुद्धिमान होना, सबसे प्रेम करना आदि पीत लेश्या वालों के लक्षण हैं।

५. पद्म लेश्या - सदा प्रसन्न रहना, सदा परोपकार करना, देवपूजा - दानादि करना, त्याग के भाव रखना आदि पद्म लेश्या वालों के लक्षण हैं।

६. शुक्ल लेश्या - राग-द्वेष से रहित होना, प्राणी मात्र के प्रति स्नेह भाव रखना, शोक-निंदा आदि से रहित होना आदि शुक्ल लेश्या वालों के लक्षण हैं।

लेश्याओं का उदाहरण - छह मित्र एक बगीचे में गए। वहाँ उन्होंने आम से लदा हुआ वृक्ष देखा, पहला मित्र बोला- चलो इस वृक्ष को उखाड़ डालें और पेट भर आम खाएँ।

दूसरे मित्र ने कहा - वृक्षों को उखाड़ने से क्या प्रयोजन, केवल बड़ी-बड़ी शाखाओं को काटने से ही हमारा काम हो जाएगा। तीसरे ने कहा- यह भी उचित नहीं है, हमारा काम तो छोटी-छोटी टहनियों के काटने से ही हो जाएगा। चौथे मित्र ने कहा- टहनियों को तोड़ने से क्या लाभ, केवल गुच्छों को तोड़ना ही पर्याप्त है। पाँचवाँ मित्र बोला- हमें गुच्छों से क्या प्रयोजन, केवल पके फल तोड़ लेना ही अच्छा है। तब अन्त में छठा मित्र गम्भीर होकर बोला- आप सब क्या सोच रहे हैं। हमें जितने फल चाहिए उतने तो नीचे ही पड़े हैं, फिर व्यर्थ में फल तोड़ने से क्या लाभ ।

इस दृष्टान्त से लेश्याओं का स्वरूप समझ में आ जाता है। पहले मित्र के परिणाम कृष्ण एवं छठे मित्र के परिणाम शुक्ल लेश्या के प्रतीक हैं। यह उदाहरण केवल परिणामों की तारतम्यता का सूचक है।

सबके दिन सदा एक से नहीं रहते

जैसे नाव में बैठने वाले व्यक्ति हिलते हैं तो कोई प्रश्न करे कि ये व्यक्ति क्यों हिल रहे हैं? तो उत्तर होगा कि नौका के हिलने से ये व्यक्ति हिल रहे हैं। तब पुनः प्रश्न उत्पन्न होता है कि नौका क्यों हिलती है? तो कहेंगे- पानी हिल रहा है। और पानी क्यों हिलता है? वायु के चलने से।

ठीक इसी प्रकार एक ही जीवन में अनेक प्रकार के उतार-चढ़ाव क्यों आते हैं, सबके दिन सदा एक से क्यों नहीं रहते? कभी बाह्य संयोग अनुकूल होते हैं तो कभी प्रतिकूल। ऐसा क्यों? अनुकूल-प्रतिकूल संयोगों का मिलना-बिछुड़ना कर्म आश्रित है। कर्म अनुकूल होते हैं तो सारे संयोग अनुकूल होते हैं और कर्म प्रतिकूल हो तो सारे संयोग प्रतिकूल होते हैं। कर्मों में ऐसी भिन्नता क्यों होती है? कर्म सदा एक से क्यों नहीं रहते। देखो, सुबह से शाम तक अपने परिणामों में कितनी तारतम्यता रहती है और परिणामों की भिन्नता से कर्म भी भिन्न-भिन्न बँधते हैं और जैसे कर्म बँधते हैं वैसा ही उनका फल देखने में आता है। कभी शुभ का उदय तो कभी अशुभ का उदय। अतः सबके दिन सदा एक से नहीं रहते।

तीन लोक का वर्णन करने वाला महान ग्रन्थ - 'तिलोयपण्णत्ती'

ईसा की द्वितीय शताब्दी (सन् १७६) के आसपास के यशस्वी आगम ज्ञाता विद्वान आचार्य यतिवृषभ द्वारा तिलोयपण्णत्ती ग्रन्थ की रचना की गई। तिलोयपण्णत्ती में तीन लोक के स्वरूप, प्रकार, विस्तार, क्षेत्रफल और युगपरिवर्तन आदि विषयों का निरूपण किया गया है। प्रसंगवश जैन सिद्धांत, पुराण और भारतीय इतिहास विषयक सामग्री भी निरुपित है। यह ग्रन्थ ९ महाधिकारों में विभक्त है।

१- सामान्य जगत्स्वरूप, २- नारकलोक, ३- भवनवासलोक,
४- मनुष्यलोक, ५- तिर्यकलोक, ६- व्यन्तरलोक,
७- ज्योतिर्लोक, ८- सुरलोक ९- सिद्धलोक।

इन नौ महाधिकारों के अतिरिक्त अवान्तर अधिकारों की संख्या १८० है।

प्रथम महाधिकार में २८३ गाथाएँ हैं और तीन गद्य - भाग हैं। दृष्टिवाद- सूत्र के आधार पर त्रिलोक की मोटाई, चौड़ाई और ऊँचाई का निरूपण किया है।

दूसरे महाधिकार में ३६७ गाथाएँ हैं, जिनमें नरकलोक के स्वरूप का वर्णन है।

तीसरे महाधिकार में २४३ गाथाएँ हैं। इनमें भवनवासी देवों के प्रासादों में जन्म शाला, औषधशाला, लतागृह आदि का वर्णन है।

चतुर्थ महाधिकार में २९६१ गाथाएँ हैं। इनमें मनुष्य लोक का वर्णन करते हुए आठ मंगलद्रव्य, कल्पवृक्ष, तीर्थंकरों की जन्मभूमि, नक्षत्र, समवशरण आदि का विस्तृत वर्णन है।

पॉचवें महाधिकार में ३२१ गाथाएँ हैं। जम्बूद्वीप, आदि का विस्तार सहित वर्णन है।

छठे महाधिकार में १०३ गाथाएँ हैं। इनमें व्यन्तरों के निवास क्षेत्र, उनके अधिकार क्षेत्र, उनके भेद, चिह्न, उत्सेध, अवधिज्ञान आदि का वर्णन है।

सातवें महाधिकार में ६१९ गाथाएँ हैं, जिनमें ज्योतिषी देवों का वर्णन है।

आठवें महाधिकार में ७०३ गाथाएँ हैं। जिनमें वैमानिक देवों के निवास स्थान, आयु, परिवार, शरीर, सुखभोग आदि का विवेचन है।

नवम महाधिकार में सिद्धों के क्षेत्र, उनकी संख्या, अवगाहना और सुख का प्रस्पण किया गया है। मध्य में सूक्तिगाथाएँ भी प्राप्त होती हैं।

यथा-अन्धा व्यक्ति कूप में गिर सकता है, बधिर उपदेश नहीं सुनता है, तो इसमें आश्चर्य की बात नहीं। आश्चर्य इस बात का है, कि जीव देखता और सुनता हुआ नरक में जा पड़ता है।

भजन

करना मन ध्यान महामंत्र णमोकार।
पहिली बार बोलो मन णमो अरिहंताणं-२।।
होवे पाप का नाश महामंत्र णमोकार-२।।१।।
दूजी बार बोलो मन णमो सिद्धाणं-२
होवे आतम ज्ञान महामंत्र णमोकार-२।।२।।
तीजी बार बोलो मन णमो आयरियाणं-२
होवे गुरु का ज्ञान महामंत्र णमोकार-२।।३।।
चौथी बार बोलो मन णमो उवज्झायाणं-२
होवे ज्ञान विकास महामंत्र णमोकार-२।।४।।
पाँचवी बार बोलो मन णमो लोए सव्वसाहूणं-२
होवे भव से पार महामंत्र णमोकार-२।।५।।

पलकें ही पलकें बिछायेंगे,जिस दिन मेरे गुरुवर घर आएँगे ।
हमतो हैं गुरुवर तेरे जन्मों से दीवाने रे ॥
मीठे-मीठे भजन सुनाएँगे, जिस दिन... ॥
घर को कोना-कोना मैंने फूलों से सजाया,
तोरण द्वार बंधाया घी का दीपक जलाया ॥
भक्तजनों को बुलाएंगे-२, जिस दिन मेरे...।
मन-वच-तन से वंदन करके चरण पखारूँ-२
धूप-दीप की थाल सजाके आरती उतारूँ-२
भक्ति के रस में समाएंगे-२, जिस दिन...।
अब तो एक लगन रे स्वामी प्रेम सुधा बरसा दो ,
जन्म-जन्म की मैली चादर अपने रंग रंगा दो -२
जीवन को सफल बनाएंगे-२, जिस दिन...।

पाठ्यक्रम - ११

११.स जैन पर्व तथा त्योहार

दशलक्षण पर्व - जैन श्रावकों का सबसे पवित्र पर्व दशलक्षण अथवा पर्यूषण पर्व है। यह पर्व प्रतिवर्ष में तीन बार माघ, चैत एवं भाद्रपद के शुक्ल पक्ष की पंचमी से चतुर्दशी तक मनाया जाता है। ये दश दिन दशलक्षण धर्म के दिन कहे जाते हैं। दश धर्मों के नाम पर ही इन पर्वों का नाम उद्घोषित किया जाता है इनके नाम उत्तम क्षमा, उत्तम मार्दव, उत्तम आर्जव, उत्तम शौच, उत्तम सत्य, उत्तम संयम, उत्तम तप, उत्तम त्याग, उत्तम आकिंचन्य एवं उत्तम ब्रह्मचर्य पर्व है। इन दिनों श्रावक लोग यथाशक्ति व्रतों का पालन करते हैं, पूजन-पाठ कर संयम के साथ दिन व्यतीत करते हैं।

भादों शुक्ला चतुर्दशी को अनन्त चतुर्दशी कहते हैं, इस दिन प्राय: सभी जैन श्रावक व्रत-उपवास करते हैं। अश्विनी कृष्णा प्रतिपदा के दिन अथवा अन्य किसी दिन क्षमावाणी पर्व मनाते हैं, अपने द्वारा हुए अपराधों की एक-दूसरों से क्षमा मांगते हैं एवं परस्पर गले मिलते हैं। यह पर्व अनादि अनिधन माना गया है। जैन सिद्धान्तानुसार अवसर्पिणी काल के अंत में भरत-ऐरावत क्षेत्र के आर्य खण्ड में महाप्रलय होता है। उसके बाद नवीन सृष्टि का प्रारंभ शुभ दिन माघ सुदी पंचमी से होता है। अत: आर्यखण्ड की इस पुन: स्थापना के स्मरण रूप भी यह पर्व मनाया जाता है।

अष्टाह्निका पर्व - यह पर्व कार्तिक, फाल्गुन और आषाढ़ माह के अन्त के आठ दिनों (शुक्ल पक्ष की अष्टमी से पूर्णिमा तक) में मनाया जाता है। अष्टम द्वीप नन्दीश्वर में स्थित बावन जिनालयों की पूजा करने चतुर्णिकाय के देव इन दिनों यहाँ आते हैं। चूंकि मनुष्य वहां नहीं जा सकते इसलिए उक्त दिनों में पर्व मनाकर यहीं पर पूजन करते हैं। इन दिनों में मुख्य रूप से सिद्ध चक्र मण्डल विधान का आयोजन किया जाता है। साधु संघों में नंदीश्वर भक्ति का पाठ किया जाता है। साधु एवं श्रावक गण इन दिनों यथाशक्ति व्रत उपवास रखते हैं।

महावीर जयन्ती - चैत्र शुक्ला त्रयोदशी (१३) भगवान महावीर की जन्म तिथि है। इसे सम्पूर्ण जैन समाज मिलकर बड़े धूम-धाम से मनाती है। केन्द्रीय सरकार के सभी सरकारी कार्यालयों की छुट्टी रहती है। प्रात:काल प्रभात फेरी निकाली जाती है। दोपहर को नगर में विशाल जुलूस, शोभायात्रा निकाली जाती है जिसमें श्री जी का विमान भी रहता है। लौटकर आने के पश्चात् श्री जी का अभिषेक होता है एवं रात्रि में भगवान के जीवन एवं उपदेश पर विद्वानों द्वारा व्याख्यान, कवि सम्मेलन, सांस्कृतिक कार्यक्रम आदि होते हैं। इस दिन प्राय: सभी श्रद्धालु जैन श्रावक व्यापारिक प्रतिष्ठान बंद रखते हैं एवं जिनधर्म की प्रभावना में अपना सहयोग प्रदान करते हैं। इस दिन अस्पताल आदि संस्थाओं के लिए दान एवं रोगियों के लिए दूध, फल, औषध आदि भी नि:शुल्क वितरण किए जाते हैं।

श्रुत पञ्चमी पर्व - भगवान महावीर के मुक्त हो जाने के लगभग ६०० वर्ष पश्चात् जब अंगश्रुतज्ञान लोप हो गया। तब गिरनार पर्वत की गुफा में निवास करने वाले धरसेनाचार्य महाराज के मन में श्रुत संरक्षण का विचार आया। निमित्त ज्ञान से उन्होंने जाना कि मेरी आयु अल्प रह गई है, मेरे बाद इस अंगज्ञान का लोप हो जावेगा। अत: योग्य शिष्यों को मुझे अंग आदि श्रुत का ज्ञान करा देना चाहिए। ऐसा विचार कर उन्होंने महिमा नगरी के यति सम्मेलन में पत्र भेजा। पत्र प्राप्त कर अर्हद्बलि आचार्य ने नरवाहन और सुबुद्धि नामक मुनिराज को उनके पास भेजा। ये दोनों मुनि जिस दिन आचार्य धरसेन के पास पहुंचने वाले थे, उसकी पिछली रात्रि को स्वप्न में उन्होंने दो हष्ट पुष्ट, सुडौल और सफेद बैलों को बड़ी भक्ति से अपने पांवों में पड़ते देखा। सवेरा होते ही दो मुनियों ने जिनकी उन्हें चाह थी, आकर गुरु चरणों में सिर झुकाकर स्तुति की। दो-तीन दिनों के पश्चात् उनकी बुद्धि, शक्ति, सहनशीलता, कर्त्तव्य बुद्धि का परिचय प्राप्त कर दोनों को दो विद्याएं सिद्ध करने के लिए दी। गुरु आज्ञानुसार वे गिरनार पर्वत पर भगवान नेमिनाथ की निर्वाण शिला पर पवित्र मन से विद्या सिद्ध करने बैठ गए। मंत्र साधन का अवधि पूरी होने पर दो देवियां उनके पास आईं। इन देवियों में एक देवी तो आँखों से अन्धी थी और दूसरी के दाँत बड़े और बाहर निकले थे। देवियों के असुन्दर रूप को देख इन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। इन्होंने सोचा देवों का तो ऐसा रूप होता नहीं फिर ऐसा क्यों ? तब इन्होंने मंत्रों की जाँच की, मंत्रों की

गलती का उन्हें भास हुआ। फिर उन्होंने ने शुद्ध कर जपा। अबकी बार उन्हें दो देवियाँ सुन्दर वेष में दिखाई पड़ीं। गुरु के पास आकर उन्होंने समस्त वृत्तान्त सुनाया। धरसेनाचार्य बड़े प्रसन्न हुए क्योंकि उन्होंने परीक्षा हेतु जानबूझ कर ही हीनाधिक मात्राओं वाला मंत्र दिया था। परीक्षा में उत्तीर्ण शिष्यों को सब तरह योग्य पा उन्हें खूब शास्त्राभ्यास कराया तथा ग्रन्थ समाप्ति पर भूतों द्वारा मुनियों की पूजा करने पर नरवाहन मुनि का नाम भूतबलि तथा सुबुद्धि मुनि की अस्त-व्यस्त दंत पंक्ति सुव्यवस्थित हो जाने से उनका नाम पुष्पदन्त रखा। आषाढ़ शु. ११ को अध्ययन पूरा हो जाने पर धरसेन गुरु से विदा ले दोनों गिरनार के निकट अंकलेश्वर आ गए वहाँ चातुर्मास किया। कुछ समय पश्चात् उन मुनिराजों ने षट्खण्डागम नामक सिद्धान्त ग्रंथ को लिपिबद्ध कर ज्येष्ठ शु. पंचमी को पूर्ण किया। उस दिन बहुत उत्सव मनाया गया। तभी से प्रतिवर्ष ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी को श्रुत (ग्रन्थों)की पूजा की जाती है तथा शास्त्रों को निकालकर धूप में सुखाया जाता है तथा वेष्टन आदि बदले जाते हैं।

रक्षाबन्धन पर्व -भगवान अरनाथ तीर्थङ्कर के काल में जब बलि आदि चार ब्राह्मण मंत्रियों ने धार्मिक द्वेष वश श्री अकम्पनाचार्य को ७०० मुनियों के संघ सहित जीवित जला देने की इच्छा से हस्तिनापुर के बाहर मुनि संघ के चारों ओर धुएँदार अग्नि जला दी, साधुगण अपने ऊपर महाविपत्ति समझकर आत्मध्यान में लीन हो गए। तब श्री विष्णुकुमार मुनि, जो कि विक्रिया ऋद्धि के धारक थे, धार्मिक प्रेम वश एवं साधर्मी वात्सल्य वश तुरन्त हस्तिनापुर आए। और अपने शरीर को विक्रिया ऋद्धि से बौने ब्राह्मण का रूप बना कर बलि मंत्री से अपने लिए तीन पैर (३ कदम) पृथ्वी माँगी। उसने देना स्वीकार कर लिया तब उन्होंने विक्रिया से बड़ा रूप बना कर दो पैर (कदम) में ही मानुषोत्तर पर्वत तक सारी पृथ्वी नाप ली। तीसरा चरण बलि के कहने पर उसकी पीठ पर रखा। इस प्रकार पृथ्वी पर अधिकार पाकर उन्होंने तुरन्त अकम्पनाचार्य के संघ के चारों ओर से अग्नि हटवाकर उनकी विपत्ति दूर की। जनता को इससे शान्ति, संतोष हुआ, उपसर्ग दूर होने पर श्रावकों ने दूध की समयौ का हल्का आहार तैयार किया और मुनियों को दिया क्योंकि धुएँ से उनके गले भी भर आए थे। वह दिन श्रावण शुक्ला १५ का था। अत: उस दिन से प्रतिवर्ष उनके स्मरण में ''वात्सल्य पर्व'' चालू हुआ और मुनि रक्षा के स्मरण स्वरूप रक्षा सूत्र हाथ में बाँधा जाता है। राखी धर्म की रक्षार्थ एक दूसरे की कलाई में बाँधी जाती है। अत: रक्षा सूत्र बहन-भाई को ही बाँधे ऐसा कोई नियम नहीं है। धर्म की रक्षार्थ, परस्पर में प्रेमभावना से रक्षासूत्र बाँधना लोक व्यवहार की अपेक्षा से मिथ्यात्व नहीं है।

दीपावली पर्व - विक्रम सं. से ४७० वर्ष पहले कार्तिक वदी अमावस्या के प्रात: से कुछ समय पहले अंतिम तीर्थङ्कर श्री भगवान महावीर पावापुरी से निर्वाण को प्राप्त हुए थे अर्थात मोक्ष गए। उस समय रात्रि का कुछ अन्धकार शेष था। अतएव देवों ने तथा मनुष्यों ने वहाँ पर अगणित दीपक जलाकर प्रकाश करके मोक्ष उत्सव मनाया। तदनुसार तबसे ही प्रतिवर्ष भारत में कार्तिक वदी अमावस्या को अनेक दीपकों का प्रकाश करके दीपावली उत्सव मनाया जाता है। चतुर्दशी की रात्रि व्यतीत होने पर प्रात: भगवान महावीर की पूजा करके निर्वाण लाडू चढ़ाया जाता है। शाम को उनके प्रधान शिष्य गौतम गणधर को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ था। मुक्ति और ज्ञान ही जैन धर्म में सबसे बड़ी लक्ष्मी मानी जाती है।

प. गुलाबचन्द जी पुष्प के लेखानुसार - दीपावली के दिन संध्याबेला में घर में सामान्य पूजन श्रावक कर सकता है, शुद्धि पूर्वक यह पूजन सूर्यास्त के पहले ही कर लेना चाहिए। पूजन करने का स्थान शुद्ध होना चाहिए जहाँ अटैच शौचालय न हो, जूते-चप्पल न पहुँचते हों, भोजन न किया जाता हो। उपर्युक्त शुद्ध स्थल को जल से स्वच्छ कर, चौकी लगाकर उस पर जिनवाणी स्थापित कर, मंगल कलश एवं दीपक की स्थापना करें। मंगलाष्टक पढ़ते हुए दिग्बंधन करके अपनी मन्त्र शुद्धि पूर्वक, कार्य का शुभारम्भ करें। तत् पश्चात् गणधर भगवान की पूजा करना चाहिए। महावीराष्टक पढ़कर दीप प्रज्वलन आदि करें। आर्य ग्रन्थों में चित्रों की पूजा का विधान नहीं है अत: चित्र की पूजा न करके जिनवाणी की स्थापना कर पूजन सम्पादित करना चाहिए। किन्तु सज्जा हेतु यदि तीर्थङ्कर आदि का चित्र लगाया जाता है तो अनुचित नहीं है। कम से कम पाँच कल्याणकों की अपेक्षा पाँच दीप प्रज्वलित करना चाहिए। अन्यत्र यह व्यवस्था भी दृष्टिगोचर होती है चौमुखी सोलह दीपक १६x४ = ६४ ऋद्धियों का प्रतीक मानकर तथा दर्शन विशुद्धि आदि सोलह कारण भावनाओं का प्रतीक मानकर दीप प्रज्ज्वलित किए जाते हैं।

ये जरूरी नहीं है हर रोज मंदिर जाने से इंसान धार्मिक बन जाए,
लेकिन कर्म ऐसे होने चाहिए कि इंसान जहाँ भी जाए मंदिर वहाँ बन जाए ।

परमानंद स्तोत्रम्

परमानन्द- संयुक्तं, निर्विकारं निरामयम्।
ध्यानहीना न पश्यन्ति, निजदेहे व्यवस्थितम्॥१॥
अर्थ : (**परमानन्द-संयुक्तं**) परम आनन्द से युक्त (**निर्विकारं**) राग-द्वेषादि विकारीभावों से रहित निर्विकार (**निरामयम्**) निरांमय/जन्म-जरा-मृत्युरूपी रोग से रहित (**निजदेहे व्यवस्थितम्**) स्वयं अपने शरीर में स्थित आत्मा को (**ध्यानहीनाः**) ध्यान से रहित व्यक्ति (**न पश्यन्ति**) नहीं देखते हैं।

अनन्त- सुख- संपन्नं, ज्ञानामृत- पयोधरम्।
अनन्त-वीर्य- संपन्नं, दर्शनं परमात्मनः॥२॥
अर्थ : (**परमात्मनः**) उत्कृष्ट आत्मा/परमात्मा का (**दर्शनं**) देखना/अनुभव करना (**अनन्तसुखसंपन्नं**) अनन्तसुख सहित (**ज्ञानामृतपयोधरम्**) ज्ञानामृतरूपी मेघ वाला (**अनन्तवीर्यसम्पन्नं**) अनन्तबल से युक्त है।

निर्विकारं निराबाधं, सर्व- संग विवर्जितम्।
परमानन्द- संपन्नं, शुद्ध- चैतन्य- लक्षणम्॥३॥
अर्थ : वह परमात्मा (**निर्विकारं**) विकार से रहित (**निराबाधं**) बाधा से रहित (**सर्वसङ्ग-विवर्जितम्**) सम्पूर्ण बाह्य-अंतरंग परिग्रह से रहित (**परमानन्द-सम्पन्नं**) परमानन्द से संयुक्त और (**शुद्धचैतन्यलक्षणम्**) शुद्ध चैतन्यरूप लक्षण वाला है।

उत्तमा स्वात्मचिन्तास्यात्, देहचिन्ता च मध्यमा।
अधमा कामचिन्ता स्यात्, परचिन्ता धमाधमा।।४।।
अर्थ : (**स्वात्मचिन्ता**) अपने आत्मा की चिंता करना (**उत्तमा**) उत्कृष्ट है (**देह-चिन्ता**) शरीर की चिंता करना (**मध्यमा**) मध्यम है (**कामचिन्ता**) विषय-भोग की चिन्ता करना (**अधमा**) जघन्य है (**पर चिन्ता**) दूसरों की चिंता करना (**अधमाधमा**) जघन्य से जघन्य है।

निर्विकल्प- समुत्पन्नं, ज्ञान- मेव सुधारसम्।
विवेक-मञ्जलिं कृत्वा, तत् पिबंति तपस्विनः॥५॥
अर्थ : (**तपस्विनः**) साधुजन (**निर्विकल्पसमुत्पन्नं**) विकल्प से रहित होने पर उत्पन्न होने वाले तत् उस (**ज्ञानम् सुधारसम् एव**) ज्ञानरूपी अमृतरस को ही (**विवेकमञ्जलिं**) विवेकरूपी अञ्जलि को (**कृत्वा**) बनाकर (**पिबन्ति**) पीते हैं।

सदानन्द- मयं- जीवं, यो जानाति स पण्डितः।
स सेवते निजात्मानं, परमानन्द- कारणम्॥६॥
अर्थ : (**यः**) जो निश्चय से (**जीवं**) जीव को (**सदानन्दमयं**) सदा आनन्द में लीन (**जानाति**) जानता है (**सः पण्डितः**) वह पण्डित है (**सः**) वह (**परमानन्दकारणम्**) परम आनन्द का कारण (**निजात्मानं**) अपनी आत्मा का (**सेवते**) सेवन करता है।

नलिन्यांच यथा नीरं, भिन्नं तिष्ठति सर्वदा।
अयमात्मा स्वभावेन, देहे तिष्ठति निर्मलः॥७॥
अर्थ : (**यथा**) जिस प्रकार (**नलिन्यां**) कमलिनी में (**नीरं**) जल (**सर्वदा**) हमेशा (**भिन्नं**) अलग रहता है उसी प्रकार (**अयं आत्मा स्वभावेन**) यह आत्मा स्वभाव से (**देहे**) शरीर में (**निर्मलः**) कर्ममल से स्वच्छ (**तिष्ठति**) रहता है।

द्रव्य- कर्म- मलै- र्मुक्तं, भावकर्म- विवर्जितम्।
नोकर्म रहितं विद्धि, निश्चयेन चिदात्मनः॥८॥
अर्थ : (**निश्चयेन**) निश्चय से (**चिदात्मनः**) इस चेतन आत्मा का स्वरूप (**द्रव्यकर्म-मलैर्मुक्तं**) ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्मरूपी मलों से रहित (**भावकर्म-विवर्जितम्**) रागादि भावकर्मों से रहित और (**नोकर्मरहितं**) शरीरादि नोकर्मों से रहित (**विद्धि**) जानो।

आनंदं ब्रह्मणो रूपं, निजदेहे व्यवस्थितम्।
ध्यानहीना न पश्यन्ति, जात्यंधा इव भास्करम्॥९॥
अर्थ : (**इव जात्यन्धाः**) जैसे जन्म से अन्धे मनुष्य (**भास्करम्**) सूर्य को (**न पश्चन्ति**) नहीं देखते/जानते हैं वैसे (**निजदेहे व्यवस्थितम्**) अपने शरीर में स्थित (**ब्रह्मणः**) आत्मा के (**आनन्दं रूपं**) आनन्दस्वरूप को (**ध्यानहीना न पश्यन्ति**) ध्यान से रहित जीव नहीं देखते/जानते हैं।

तद्धयानं क्रियते भव्यै-, र्मनो येन विलीयते।
तत्क्षणं दृश्यते शुद्धं, चिच्चमत्कार लक्षणम्॥१०॥
अर्थ : (**भव्यैः**) भव्यजीवों के द्वारा (**तद्धयानं**) उस आनन्द स्वरूप परमात्मा का ध्यान (**क्रियते**) किया जाता है (**येन**) जिससे (**मनः**) मन (**विलीयते**) उसी में विलीन हो जाता है और (**तत्क्षणं**) उसी समय (**चित्-चमत्कार-लक्षणम्**) चैतन्य चमत्कार लक्षण वाला (**शुद्धं**) शुद्ध आत्मतत्त्व (**दृश्यते**) दिखाई देता है/अनुभव में आता है।

ये ध्यानशीला मुनयः प्रधानास्ते दुःखहीना नियमाद्भवन्ति।
सम्प्राप्य शीघ्रं परमात्मतत्त्वं, व्रजन्ति मोक्षं क्षणमेकमेव॥११॥
अर्थ : (**ये**) जो (**प्रधानाः मुनयः**) श्रेष्ठ मुनि (**ध्यानलीनाः**) ध्यान में लीन होते हैं (**ते**) वे (**नियमात्**) नियम से (**दुखहीनाः**) दुःखों से रहित (**भवन्ति**) होते हैं तथा (**शीघ्रं**) जल्दी से (**परमात्मा तत्त्वं**) परमात्मतत्त्व को (**सम्प्राप्य**) प्राप्तकर (**एकं क्षणं एव**) एक क्षण में ही (**मोक्षं**) मोक्ष को (**व्रजन्ति**) प्राप्त करते हैं/जाते हैं।

आनंदरूपं परमात्मतत्त्वं, समस्तसंकल्प विकल्पमुक्तम्।
स्वभावलीना निवसन्ति नित्यं, जानाति योगि स्वयमेवतत्त्वं॥१२॥
अर्थ : (**समस्त-संकल्प-विकल्प-मुक्तम्**) सम्पूर्ण संकल्प-विकल्पों से रहित (**आनन्दरूपं**) आनन्दरूप (**परमात्मतत्त्वं**) परमात्मतत्त्व को (**योगी**) योगी (**नित्यं**) हमेशा (**जानाति**) जानता है इसलिए (**स्वभावलीनाः**) स्वभाव में लीन योगिजन (**स्वयमेव**) स्वयं ही (**तत्त्वम्**) आत्मस्वभाव में (**निवसन्ति**) निवास करते हैं।

चिदानन्द- मयं शुद्धं, निरा- कारं निरामयम्।
अनंत- सुख- संपन्नं, सर्वसंग- विवर्जितम्॥१३॥
लोकमात्रप्रमाणोऽयं, निश्चये न हि संशयः।
व्यवहारे तनूमात्रः, कथितः परमेश्वरैः॥१४॥
अर्थ : (**परमेश्वरैः**) तीर्थङ्कर भगवन्तों के द्वारा (**अयं**) यह आत्मा (**निश्चय**) निश्चयनय की विवक्षा में (**निराकारं**) आकार रहित (**निरामयम्**) व्याधि रहित (**अनन्तसुख-सम्पन्नं**) अनन्तसुख से युक्त (**सर्वसङ्गविवर्जितम्**) सम्पूर्ण अन्तरङ्ग व बहिरङ्ग परिग्रह से रहित (**चिदानन्दमयं**) आत्मानन्दरूप (**शुद्धं**) समस्त कर्ममल से रहित पवित्र (**लोकमात्रप्रमाणः**) लोक के बराबर परिमाण वाला और (**व्यवहार**) व्यवहारनय की विवक्षा में (**तनूमात्रः**) शरीर के बराबर (**कथितः**) कहा गया है इसमें (**हि**) नियम से (**न संशयः**) संशय नहीं है।

यत्क्षणं दृश्यते शुद्धं, तत्क्षणं गतविभ्रमः।
स्वस्थचित्तः स्थिरी भूत्वा, निर्विकल्पसमाधिनाः॥१५॥
अर्थ : (**निर्विकल्पसमाधिना**) विकल्प रहित ध्यान के द्वारा यह आत्मा (**यत्क्षणं**) जिस समय (**स्वस्थचित्तः**) स्वस्थ मन होता हुआ (**स्थिरीभूत्वा**) स्थिर होकर (**शुद्धं**) शुद्ध आत्मस्वरूप को (**दृश्यते**) देखता है (**तत्क्षणं**) उसी समय (**गतविभ्रमः**) आत्म विषयक भ्रम से दूर हो जाता है।

स एव परमं ब्रह्म, स एव जिन- पुङ्गवः।
स एव परमं तत्त्वं, स एव परमो गुरुः॥१६॥
अर्थ : (**सः**) वह आत्मा (**एव**) ही (**परमं ब्रह्म**) परम ब्रह्म है (**सः**) वह आत्मा (**एव**) ही (**जिनपुङ्गवः**) जिन श्रेष्ठ है (**सः**) वह आत्मा (**एव**) ही (**परमं तत्त्वं**) परम तत्त्वरूप है (**सः**) वह आत्मा (**एव**) ही (**परमः गुरुः**) उत्कृष्ट गुरु है।

स एव परमं ज्योतिः, स एव परमं तपः।
स एव परमं ध्यानं, स एव परमात्मनः॥१७॥
अर्थ : (**सः**) वह आत्मा (**एव**) ही (**परमं ज्योतिः**) परमं ज्योति/केवल ज्ञान स्वरूप है (**सः**) वह आत्मा (**एव**) ही (**परमं तपः**) इच्छा निरोधरूप उत्कृष्ट तप है (**सः**) वह आत्मा (**एव**) ही (**परमं ध्यानं**) उत्कृष्ट शुक्लध्यान है (**सः**) वह आत्मा (**एव**) ही (**परमात्मनः**) परमात्मा का स्वरूप है।

स एव सर्वकल्याणं, स एव सुखभाजनम्।
स एव शुद्धचिद्रूपं, स एव परमः शिवः॥१८॥
अर्थ : (**सः एव**) वही आत्मा (**सर्व-कल्याणं**) सब कल्याण स्वरूप (**सः एव**) वही आत्मा (**सुखभाजनम्**) सुख प्राप्त करने वाली (**सः एव शुद्ध-चिद्रूपं**) वही शुद्ध ज्ञानदर्शन चेतनारूप है (**सः एव**) वही आत्मा (**परमं शिवः**) उत्कृष्ट मोक्ष स्वरूप है।

स एव परमानंदः, स एव सुखदायकः।
स एव परमज्ञानं, स एव गुणसागरः॥१९॥
अर्थ : (**सः एव**) वही आत्मा (**परमान्दः**) उत्कृष्ट आनन्दरूप है (**सः एव**) वही आत्मा (**सुखदायकः**) सुखों को देने वाली है (**सः एव**) वही आत्मा (**परमज्ञानं**) उत्कृष्ट केवलज्ञानरूप (**सः एव**) वही आत्मा (**गुणसागरः**) गुणों का समुद्र है।

परमाह्लाद- संपन्नं, रागद्वेष- विवर्जितम्।
सोऽहं तं देहमध्येषु, यो जानाति स पण्डितः॥२०॥
अर्थ : (**सः अहं**) वह मैं (**परमाह्लद-सम्पन्नं**) उत्कृष्ट आनन्द से युक्त (**रागद्वेषविवर्जितम्**) राग-द्वेष से रहित हूँ ऐसा (**यः**) जो (**देहमध्येषु**) कार्मण तैजस औदारिकादि शरीरों में स्थित (**तं**) उस आत्मा को (**जानाति**) जानता है (**सः पण्डितः**) वही पण्डित/ज्ञानी है।

आकार- रहितं शुद्धं, स्वस्वरूप व्यवस्थितम्।
सिद्धमष्ट- गुणोपेतं, निर्विकारं निरञ्जनम्॥२१॥
तत्सद्दर्शनं निजात्मानं, प्रकाशाय महीयसे ।
सहजानन्द- चैतन्यं, यो जानाति स पण्डितः॥२२॥
अर्थ : (**शुद्धं**) द्रव्यकर्म, भावकर्म और शरीरादि नोकर्म से रहित शुद्ध (**आकाररहितं**) आकार रहित (**स्व-स्वरूप-व्यवस्थितम्**) अपने स्वरूप में स्थित (**अष्टगुणोपेतं**) अष्टगुणों से युक्त (**निर्विकारं**) विकार रहित (**निरंजनम्**) कर्म कालिमा से रहित निरंजन (**सिद्धं**) सिद्धों को (**महीयसे**) महान्/विशाल (**प्रकाशाय**) केवलज्ञानरूपी प्रकाश के लिए (**यः**) जो (**सहजानन्दचैतन्यं**) सहजानन्दरूप चैतन्य (**निजात्मानं**) अपनी आत्मा को (**तत्सदृशं**) उन सिद्धों समान (**जानाति**) जानता है (**सः पण्डितः**) वह पण्डित है।

पाषाणेषु यथा हेमं, दुग्ध- मध्ये यथा घृतम्।
तिलमध्ये यथा तैलं, देहमध्ये तथा शिवः॥२३॥
अर्थ : (**यथा**) जैसे (**पाषाणेषु**) पत्थरों में (**हेम**) सोना (**यथा**) जैसे (**दुग्धमध्ये**) दूध में (**घृतम्**) घी (**यथा**) जैसे (**तिलमध्ये**) तिलों में (**तैलं**) तेल (**तथा**) वैसे (**देहमध्ये**) शरीर में (**शिवः**) परमात्मा है।

काष्ठमध्ये यथा वह्निः, शक्तिरूपेण तिष्ठति।
अयमात्मा शरीरेषु, यो जानाति स पण्डितः॥२४॥
अर्थ : (**यथा**) जैसे (**काष्ठमध्ये**) लकड़ी में (**वह्निः**) अग्नि (**शक्तिरूपेण**) शक्तिरूप से (**तिष्ठति**) रहती है वैसे ही (**अयं**) यह (**आत्मा**) आत्मा (**शरीरेषु**) शरीरों में (**तिष्ठति**) रहती है ऐसा (**यः**) जी (**जानाति**) जानता है (**स पण्डितः**) वह पण्डित/ज्ञानी है।